द्वितीय अध्याय–2

पखावज की उत्पत्ति, अंगो, तालों का वर्णन

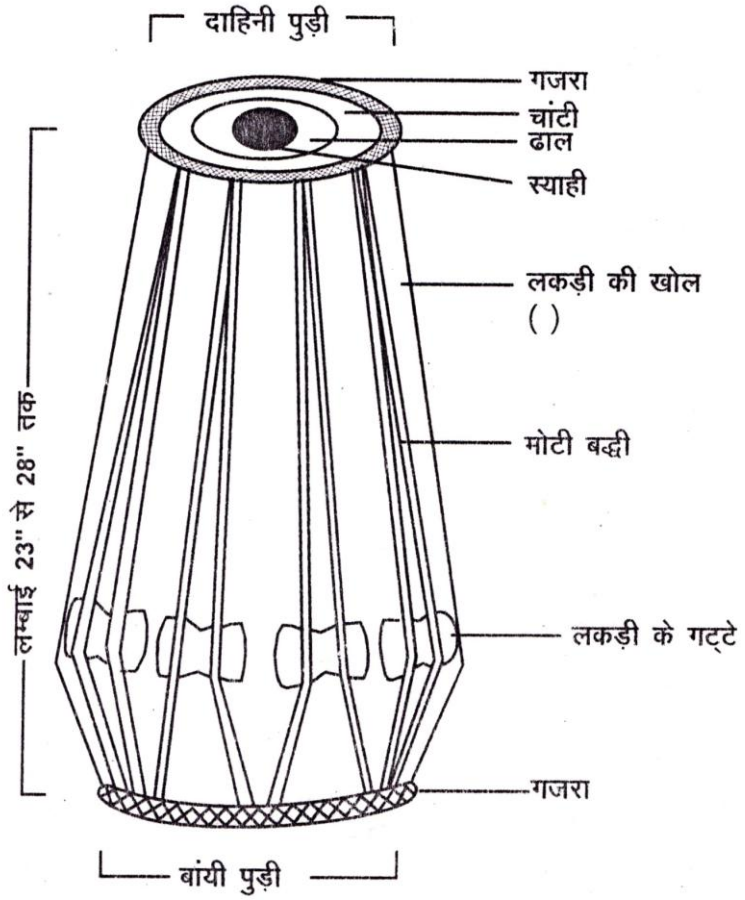

द्वितीय अध्याय– पखावज की उत्पत्ति, अंगो, तालों का वर्णन

पखावज का इतिहास अत्यन्त प्राचीन नहीं है। 15वीं शताब्दी तक किसी भी संगीत पुस्तक या अन्य किसी भी स्थान पर पखावज को कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन तथा मध्यकाल में ताल वाद्य के रूप में मृदंग का उल्लेख मिलता है, अनुमान यह है कि मृदंग के आकार बनावट में थोड़ा परिवर्तन कर मृदंग को ही पखावज कहा जाने लगा होगा।

पखावज की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इस सम्बन्ध में मृदंग ही प्रमुख आधार माना गया है। आचार्य भरतकालीन निर्मित त्रिपुष्कर वाद्य के तीन अंग आंकिक, आलिंग्य, उर्ध्वक थे। अंकित यह वाद्य लेटाकर बजाया जाता था इस वाद्य के दो मुख थें। आलिग्य इस वाद्य का एक मुख था उर्ध्वक यह खड़ा बजाया जाता था इस वाद्य का भी एक ही मुख था। कालान्तर मे त्रिपुष्कर के दो अंग विलुप्त हो गये केवल अंकित वाद्य ही प्रचलित रहा यही वाद्य आगे चलकर कुछ परिवर्तन के साथ मृदंग, पखावज के रूप में प्रचलित हुआ।

रामचरित मानस में प्रयुक्त बाजत ताल पखावज बीना, अथवा बाजत ताल मृदंग अनूपा तथा घंटा घंटि पखावज आउज आदि पंक्तियों के जाहिर होता है कि चार–पाँच सौ वर्ष पूर्व पखावज शब्द प्रचलन में आ गया था। दोनो पक्षो से बजने के कारण मृदंग का नाम पक्षवाद्य हुआ और कालान्तर में इसे पखबाज कहा जाने लगा। यह नाम आज भी महाराष्ट्र में प्रचलित है। धीरे–धीरे पखबाज पखावज कहा जाने लगा।[1]

डॉ0 आबान ई मिस्त्री के अनुसार पखावज का अर्थ है पख याने परवुवा बांह का वह भाग जो बगल में पड़ता है और बाज अर्थात बजाना। अतः पूरे बाहु से जो बजाया जाता हो वह पखवाज है, कुछ अन्य लोगो के मतानुसार पखवाज शब्द पक्ष वाद्य से बना है। पक्ष के दो शाब्दिक अर्थ है। 1– भुजाएँ 2– वस्तु के दो छोर। वाद्य

1– छायानट पत्रिका अंक 10 जुलाई सितम्बर 1979 – रामशंकर दास पृ0सं0 81 प्रकाशक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी।

के दोनो मुखों पर दोनो भुजाओं के सहयोग से जो बजाया जाता हो वह पक्ष वाद्य है।[1]

डॉ0 मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे ने अपनी पुस्तक ताल वाद्य शास्त्र में लिखा है कि यह फारसी शब्द है। पखावज का अर्थ कई तरह से निकाला जाता हैं।

1– पख (मृदु) + आवाज जिस पर आसदार आवाज निकले।

2– पखावज – पखबाज का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है पूरी पख (पूरी बाजू) के दम से बजाया जाने वाला।

इस प्रकार कई अर्थ निकाले जाते हैं। इसी प्रकार कुछ तथ्यपूर्ण तर्क सामने आते हैं जिसे आतोद्य का अप्रभंश शब्द आवज हैं। जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंन्थों में मिलता है। आतोद्य यानि वाद्य। इस प्रकार आवज यानि वाद्य पख यानि पूरी बाजू। पूरी बाजू के दम से बजाया जाने वाला वाद्य पखावज है।[2]

भारतीय संगीत कोश में पं0 विमलकान्त राय चौधुरी के अनुसार पखावज फारसी शब्द पाख आवाज से बना है जिसमें मन्द ध्वनि निकलती हैं।[3]

इस प्रकार मृदंग के दो नाम प्रचार में आये। पखावज और पखवाज। कही–कही पखावज कहते हैं और कही–कही, पखवाज। पखवाज पक्ष वाद्य का अपभ्रश है। जिसका अर्थ है वह बाज (वाद्य) जो बाजुओं पक्ष के द्वारा बजाया जाता है पखावज पक्षातोद्य का अपभ्रंश है। आतोद्य का अर्थ है बाज, आ उपसर्ग है। तोद्य शब्द तुद् धातु से बना है। जिसका अर्थ है आद्यात करना। आतोद्य का अपभ्रंश प्राकृत भाषा में हुआ आवुज या आवाज। पक्ष का अपभ्रंश हुआ पख। पख और आवाज मिलकर बन गया पख–आवाज अर्थात पखावज।[4]

प्राचीन संगीत ग्रन्थों में पखावज शब्द का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। मध्यकालीन अष्टछाप कवि सूरदास की रचनाओं में पखावज शब्द का उल्लेख हैं।

1– पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें डॉ0 आबान ई मिस्त्री पृं0 सं0 26 प्रकाशक पं केकी0 एस0 जिजिना स्वर समिति मुम्बाई।

2– तालवाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे पृ0सं0 25 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियार

3– भारतीय संगीत कोष विमलाकान्त राय चौधरी पृ0 सं0 150 प्रकाशक वाणी प्रकाशक, नई दिल्ली।

4– प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं डॉ0 मोहिनी वर्मा पृ0सं0 58, 59 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद

बाजत ताल, पखावज, झालरि गुन गावत ज्यों हरषत।
नाचति नदी सुल गत उमगन सून सुमन सुर बरषत।।
कुछ स्थानों में पखावज, मृदंग दोनों का उल्लेख मिलता है।
''ताल, मृदंग उपंग, चंग बीना डफ बाजे।।''

तथा

''बाजत ताल पखावज आवज ढोलक बीच झांझ।''[1]

राग दर्पण में फकीरूल्लाह ने एक शतायु पखावजी भगवान दास की चर्चा की है। यह अकबर युगीन श्रेष्ठ कलाकार थे और तानसेन की संगत किया करते थे इस ग्रंथ में जगपत अथवा जगपति नामक एक पखावजी का उल्लेख भी हुआ।[2]

डॉ0 सत्यभान शर्मा के अनुसार– मृदंग का अंग मिट्टी के बने होने के कारण स्थिर नही रह पाता था। जिसके कारण बाद में इसे काष्ठ का बनाया गया और तब इसका नाम पक्ष वाद्य अर्थात दोनों पक्षो यानि बगलों (बाजुओं) से बजाने वाला वाद्य रहा होगा और कालान्तर में भाषा विज्ञान के नियमानुसार क्रमशः इसका नाम पखावज हो गया होगा तथा–

पक्षवाद्य, पखाउज, पखावुज तथा पखावज–।[3]

पखावज यावनिक नाम है मध्यकाल में उत्तर भारतीय संगीत पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पडा। ऊर्द, फारसी, अरबी जैसी भाषायें भी भारत आई। भाषा प्रभाव कारण पखावज नाम पड़ा होगा।

मध्य युग में ध्रुपद, धमार जैसी गम्भीर गायकी प्रचलित थी। जिसका प्रचार प्रसार निर्माण ग्वालियर शासक राजा मानसिंह तोमर ने किया था। इन गायन शौलियों के साथ संगत के लिए किसी गम्भीर ध्वनि वाले वाद्य की आवश्यकता के फलस्वरूप पखावज वाद्य प्रचार में आया। इस प्रकार इन गायन शैलियों के साथ संगत के लिया पखावज मुख्य वाद्य के रूप में प्रयुक्त हुआ।

1– भक्त कवि सूरदास दशम स्कन्ध पद 1044 पृ0 480

2– छायानट अंक 66 जुलाई सितम्बर 1993 – राजा छत्रपति सिंह पृ0सं0 40 प्रकाशक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी।

3– पखावज की उत्पत्ति एवं विकास एवं वादन शैलियां डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 60, 61 प्रकाशक– कनिष्क पब्लिशर्ष डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

वास्तव में मृदंग का प्रतिरूप पखावज है मिट्टी का बना होने के कारण मृदंग को रखने चढ़ाने उतारने रख रखाव में बहुत कठिनाई अनुभव की जाती थी वादकों के जोरदार मृदंग वादन के समय मृदंग टूट जाता था। ''संगीत दर्पण में कहा गया है कि मिट्टी से निर्मित यह वाद्य शीघ्र नष्ट हो जाता था इसलिए द्वापर युग में कृष्ण के समकाल में मृदंग का निर्माण काष्ठ से हुआ। मिट्टी से निर्मित इस वाद्य के मुकाबले काष्ठ निर्मित मृदंग को मधुर मृदंग भी कहा है।

पंडित सोमेश्वर मिश्र ने भरतकोष में लिखा हैं मृदंग मिट्टी का ही नहीं पुरातन समय में बीजवृक्ष की लकड़ी का भी बनता आया है।[1]

इस प्रकार मृदंग मिट्टी के साथ–साथ लकड़ी के भी बनने लगा और इस वाद्य का नाम आगे चलकर पखावज पड़ा। अतः मिट्टी से बना मृदंग कहा गया एवं काष्ठ से बना वाद्य पखावज कहा गया।

अपने लेख में स्वामी पागलदास ने लिखा है– पखावज शब्द का प्रचलन इतना बढा कि मृदंग और पखावज को आज अलग–अलग रूपों में स्वीकार किया जाता है विशेष कर सरकारी अभिलेखो आकाशवाणी तथा अन्य संगीत संस्थाओं में शत प्रतिशत मृदंग को पखावज कहने और लिखने की प्रथा प्रचलित है। फिर भी पखावज वादको को जब उपाधि प्रदान की जाती है तो उन्हे पखावजाचार्य न कहकर मृंदगाचार्य कहकर ही सम्बोधित किया जाता है।[2]

बात अगर आकार की जाए तो आकार में भी दोनो के अन्तर है। पखावज मृदंग से आकृति में बड़ा होता है, और मृदंगा कुछ छोटा होता है साथ ही मृदंगा में गट्टे नही लगाये जाते है जबकि पखावज में गट्टे होते हैं।

1– प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं डॉ0 मोहिनी वर्मा पृ0सं0 53 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग इलाहाबाद।

2– छायानट अंक 10 जुलाई सितम्बर 1979 – स्वामी पागल दास – पृ0 सं0 81, 82 प्रकाशक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।

पखावज का विकास

बात अगर पखावज के विकास की करे तो पखावज का विकास राज्याश्रय एवं देवाश्रय (मन्दिरो) दोनो स्थानों में समान रूप से हुआ। घरानों के संरक्षण और विकास के पीछे उन राजा नवाबों का योगदान अमूल्य है। इस आश्रय के कारण जीवन निर्वाह की छोटी–मोटी चिन्ताओं से मुक्त होकर कलाकार पूर्ण निश्चिन्तता से कला साधना से निमग्न रहता था श्री वामनराव देशपांडे लिखते है।

"The Orphaned art of music naturally sought refuge in the small yet undisturbed and appreciative shelter provided by the princely native states.

The Maharajas loved music passionately. Some of them Patronised eminent musicians as symbols of Princely Status and glory.

They gave them sumptuous fees and Prizes and freed them from the worries of day to day living so that they might devote themselves single-mindedly to the cultivation of art and its propagation and instruction.[1]

इस प्रकार जहॉ एक ओर कुदऊ, सिंह, नाना पानसे जैसे महान कलाकारों ने राजदराबारों में रहकर योगी भाति संगीत साधना कार अनेको महान शिष्यों को तैयार किया। वही मन्दिरों में अष्टछाप कवियो, कीर्तनकारों ने पखावज वादन को अक्षुण्ण रखा और प्रभु भक्ति में साधना कर पखावज वादन को नित नई दिशा प्रदान किया है।

इस सम्बन्ध में डॉ0 मधु भट्ट तैलग लिखती है ''मेरे मत से मध्यकाल में इन दोनों परम्पराओं में कलाकारों ने अपने को समृद्ध किया। एक ओर स्वामी हरिदास एवं गोविन्द स्वामी आदि जैसे सन्त गायकों के साथ भी पखावज बजती थी। तथा दूसरी ओर बैजू एवं तानसेन आदि कलावन्तों के साथ भी पखावज बजती थी। उस काल में कीर्तन भजन के साथ पखावज का संगत के रूप में प्रचार होता रहा पखावज की एकल वादन परम्परा मंदिर में नही व्याप्त थी न ही दरबारों में।[2]

1– पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें डॉ0 आवान ई0 मिस्त्री पृ0सं0 9 प्रकाशन, पं केकी0 एस0 जिजिना स्वर साधना समिति मुम्बई।

2– हिन्दुस्तानी संगीत के पखावज वादन के बल्लभ सम्प्रदाय की देन डॉ0 मधु भट्ट तैलग पृ0 सं0 51 प्रकाशक राजस्थान संगीत नाटक अकादमी।

अतः पखावज को प्रमुख संगत वाद्य माना गया। ध्रुपद धमार की गायकी गम्भीर, जोरदार थी उसके साथ पखावज ही उपर्युक्त संगत वाद्य माना गया। किन्तु वर्तमान समय में पखावज पर संगत के साथ–साथ स्वतन्त्र वादन भी किया जाता है।

मोहिनी वर्मा लिखती है वर्तमान में पखावज संगति का वाद्य नही रह गया। अपने प्रस्तारों, चक्रिय, क्रियाओं और नाना प्रकार के परनों द्वारा वह एक अद्‌भुत एकल (Solo) वाद्य भी बन गया। लगभग 200 वर्ष के भीतर इस वाद्य का पर्याप्त विकास हुआ है। पखावज मुख्यतः थापी का बाज है हमारे गुणीजन वादकों ने अपनी आजीवन तपस्या के द्वारा इसे अपने चरमोत्कर्ष पर पहुॅचा दिया है और साथ ही साथ इसे अत्यन्त सम्माननीय स्थान भी दिलाया है।[1]

किन्तु वर्तमान समय में काफी हद तक पखावज की लोकप्रियता में कमी आई है। पखावज का साथी ध्रुपद धमार का स्थान ख्याल ने लिया तो पखावज वा स्थान तबला ने ले लिया। वाद्य यंत्र पुस्तक मे वी0 चैतन्यदेव लिखते है ''पखावज हिन्दुस्तानी संगीत में प्रयुक्त अवनद्ध वाद्यों का सम्राट है हालांकि आजकल यह दूर ही से सत्कार पाने वाला मात्र संवैधानिक प्रमुख प्रतीत होता है। एक समय था जब वह सचमुच अवनद्ध वाद्यों का राजा था और कत्थक, नृत्य, भजन, ध्रुपद एवं बीन (वीणा) में संगत के लिए प्रयुक्त होता था। अब वक्त बदल गया है, ख्याल गायकी और सितार वादन ने मैदान मार लिया है और यों कोमल शब्द वाले तबला ने इसका स्थान ले लिया है।[2]

पखावज की लोकप्रियता में कमी के कारण

वर्तमान समय में पखावज की लोकप्रियता में कुछ कमी आई है। इसके अनेक कारण है। सबसे प्रमुख एवं मुख्य कारण ध्रुपद धमार गायकी का कम गाया जाना है। वर्तमान समय में गायक कलाकार द्वारा ध्रुपद धमार गायन कम गाये जाते है। इसी

1– प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं डॉ0 मोहिनी वर्मा पृ0सं0 59 प्रकाशक अनुभव पब्लिशिंग इलाहाबाद

2– वाद्य यंत्र वी0 चैतन्यदेव अनुवादक अलका पाटक पृ0सं0 44 प्रकाशक नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया।

कारण उसका साथी पखावज भी कम प्रयोग किया जाता है, जहाँ ध्रुपद धमार गायकी गाई भी जाती है वहाँ तबला वादन द्वारा संगति दी जाती है। पखावज गम्भीर जोरदार वाद्य है जो केवल ध्रुपद धमर की गायकी के लिए ही उपयुक्त है किन्तु वर्तमान समय ख्याल गायकी गजल, कव्वाली, ठुमरी, टम्पा जैसी गायकी का है। जिसके साथ पखावज उपयुक्त नही बैठता। तबला वर्तमान समय में सभी गायकी के साथ उपयुक्त है। तबले में कोमल, गम्भीर, जोरदार सभी तरह के बोल बजाया जा सकता है तबला सरलता से सभी प्रकार के संगीत के साथ प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी कार्यक्रम में एक तबला वादक द्वारा सभी गायकी की संगति हो जाती है। इस कारण पखावज या मृदंग के बिना भी संगीत सभायें पूर्ण हो जाता है। पखावज वर्तमान संगीत से मेल नही खाता।

स्वामी पागलदास ने छायानट पत्रिका में मृदंग लुप्तप्राय पर कुछ तथ्य लिखा है। 1– विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में मृदंग के लिए समुचित शिक्षा का प्रबन्ध प्रायः नहीं के बराबर है। जहां एकाध शिक्षक है भी, वहां विद्यार्थी यह कहकर कट जाते है कि मृदंग सीखकर क्या करेंगे। क्योंकि मृदंग का आर्थिक पक्ष अत्यन्त दुर्बल है।

2– आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों पर मृदंग वादकों की नियुक्ति का स्थान गौण है। केवल आमन्त्रित कलाकार के रूप में ही साल भर में उन्हे दो–तीन प्रोग्राम मिल पाते हैं।

3– संगीत सम्मेलनों में मृदंगवादको का स्थान नगण्य रहता है। स्वामी हरिदास, तानसेन आदि के नामो पर आयोजित संगीत सम्मेलनों में भी एकाध मृदंगवादक मात्र नाम के लिए ही बुला लिये जाते है।

4– ध्रुवपद शैली तथा वीणावादक की शिक्षण व्यवस्था न होने से उपयुर्क्त शैली के विद्वानों का अभाव होते रहना भी एक कारण है।

5– राष्ट्रीय तथा अन्य संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कारों वित्तीय सहायता में भी मृदंग का स्थान उपेक्षित बना हुआ है।[1]

पखावज की अलोकप्रियता के अन्य कारण, पखावज का बड़ा आकार एवं भारीपन होना है जिसे संगीत कार्यक्रम में रखने उठाने में असुविधा होती है। साथ ही वादन के पूर्व बाएं मुँह पर गेहूँ या जौ का गुंधा आटा लगाया जाता है। जिससे लोग सोचते है केवल ध्रुपद धमार की संगति के लिए क्या पखावज लेकर आये क्यो न तबले से ही संगति कर दी जायें। साथ ही पखावज का वादन कठिन एवं शक्ति की अधिक आवश्यकता होती है युवा वर्ग के बालक–बालिका वादन कठिन जानकर पखावज वादन में रूचि नही लेते और जो लेते है। उन्हे योग्य गुरू न मिलने के कारण पखावज वादन छोड़कर अन्य संगीतज्ञ वाद्य बजाने लगते है।

किन्तु वर्तमान समय में पखावज की लोकप्रियता पहले के अपेक्षा बढ़ी है। पं0 डाल चन्द्र शर्मा के अनुसार वर्तमान समय में पखावज की स्थिति पहले की अपेक्षा ठीक–ठाक है। 20–30 वर्ष पहले की अपेक्षा अच्छी है वर्तमान समय में कई योग्य कलाकार इस क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे है।

वर्तमान समय में केवल पुरूष ही नही अपितु महिलायें भी पखावज वादन में रूचि ले रही हे।

चित्रांगन आगले के अनुसार – ''इनके द्वारा तथा बाबा अलाउद्दीन खाँ अकादमी के आर्थिक सहयोग से इन्दौर में एक पखावज का कार्यशाला आयोजित किया गया था। जिसमें छात्रों की संख्या 100 के आसपास थी। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह थी कि आस–पास के क्षेत्रो ंसे करीब 40 लड़कियों ने इस कार्यशाला में भाग लिया जो कि पखावज वादन के लिए शुभ संकेत है।[2]

1– छायानट अंक 10 जुलाई सितम्बर 1979 स्वामी पागल दास पृ0सं0 83 प्रकाशक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी लखनऊ।

2– पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 224 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली।

पखावज के अंग

मृदंग उस वाद्य का नाम है जिसे स्वयं ब्रह्मा जी ने त्रिपुरासुर राक्षस के रक्त से मिट्टी को सानकर गढ़ा और उसके चमड़े से मृदंग की पूड़ी बनाई। हड्डियों से गट्टे बनाये गये। इस वाद्य को स्वयं गणेश जी ने बजाया। बाद में मृदंग मिट्टी की बनी फिर अष्टधातु की बनी। तदुपरांत लकड़ी की बनी।[1]

प्राचीन काल में मृदंग मिट्टी का बना होता था जो प्रायः टूट जाता था कालान्तर में मृदंग मिट्टी के स्थान पर लकड़ी का निर्मित होने लगा और मृदंग का प्रतिरूप पखावाज के रूप मे प्रकट हुआ।

भगवत शरण शर्मा ने अपनी पुस्तक ताल प्रकाश में लिखा है कि यह एक प्राचीन ताल–वाद्यों में से है। प्रारम्भ में इसका खोखला भाग मिट्टी का बनाया जाता था जिसे धड़ कहते थे। इसी धड़ के दोनों मुखों पर पुडियाँ मढ दी जाती थीं। इन पुडियों में तनाव रखने के लिए चमड़े की डोरी, जिसे तस्मा कहते है लगाई जाती थी। इस प्रकार मिट्टी के मृदंग में गट्टे नही लगाए जाते थे, फलस्वरूप यह एक ही स्वर में मिला रहता था।

बाद में धड़ लकड़ी का बनाया जाने लगा। इसके दोनों ओर लोहे के दो पहिए लगाए गए। इन पहियों के ऊपर पुडी कसी जाने लगी। स्वर को ऊँचा–नीचा करने के लिए लोहे के पहियों में छेद करके तस्मे लगाए गए। इतना करने पर भी इच्छित नाद प्राप्त न हो सका।

अतः इस प्रकार मृदंग में से लोहे के दोनों पहिए हटा दिए गए। साथ–साथ आठ लकड़ी की गट्के तस्मो के नीचे लगाई गई। इस प्रकार इसे इच्छित स्वर में मिलाना संभव हो गया।[2]

पखावज का शरीर लकड़ी द्वारा निर्मित होता है। इसके लिए विजयसार शीशम, खैर, नीम, बबूल, कटहल आदि की लकड़ी अधिक प्रयोग में लाई जाती है। पखावज

1– पखावज पारिजात ठाकुर भीखम सिंह गौतम पृ0सं0 44 प्रकाशक, संगीत प्रेस साउथ मलाका, इलाहाबाद।

2– ताल प्रकाश भगवत शरण शर्मा पृ0सं0 262 प्रकाशक, संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0।

को लेटाकर बजाया जाता है, पखावज अन्दर से खोखला होता है, इसी कारण पखावज की ध्वनि में गूज होती है। ''पखावज की शैली उसके बनावट के अनुसार होती है। पखावज का एक ही अंग तथा बीच में से खोखला होने के कारण एक मुख पर वादन करने से उत्पन्न ध्वनि की प्रतिध्वनि दूसरे मुख के अन्दर से प्राप्त होती है। इस कारण पखावज में उत्पन्न होने वाली ध्वनि गंभीर होती है।''[1]

शरीर– मृदंग (पखावज) की लम्बाई 22 से 30 इंच तक होती है। खोल दोनों ओर से खुली रहती है। दाहिने मुँह का व्यास 6 से 8 तथा बांये मुँह का व्यास 8 से 10 होता है।[2]

पूरी– पखावज पर मढे गये चमडे या खाल को पूरी कहते है। यह बकड़े के चर्म का होता है। इसके अन्तर्गत चॉटी लव तथा स्याही होती है। उसे पूरी कहते है, पखावज की दायें पूरी पर लौहचूर्ण–युक्त स्याही लगाया जाता है, जिससे कि स्वर स्थिर रहता है तथा बायें पूरी पर स्याही के स्थान पर गीले आटे का लेप लगाया जाता है।[3]

चाँटी– पूरी के किनारे–किनारे एक इंच व्यास का एक चमड़ा लगाया जाता है, जिसे चाँटी या किनारे कहते है।

लव– स्याही और चाँटी के बीच के खाली स्थान को लव कहते है।

स्याही– दाये पूडी के बीचो–बीच में लौह चूर्ण युक्त स्याही होती है जिसमे। ध्वनि में गूज बढ़ जाती है बाये पूडी में स्याह नही होती स्याही के स्थान पर गेहूँ के आटे को गूथकर लगाते है बाएं का स्वर ऊँचा करने के लिए आटे की मात्रा कम कर दी जाती है और स्वर नीचा करने के लिए आटे की मात्रा बढ़ा दी जाती है।

1– ताल वाद्य शास्त्र मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे पृ0सं0 117 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2– पखावज पारिजात ठाकुर भीखम सिंह गौतम पृ0सं0 46 प्रकाशक, संगीत प्रेस साउथ मलाका, इलाहाबाद।

3– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियॉ अजय कुमार पृ0सं0 137 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

वादन समाप्ति के पश्चात आटा खुरज कर निकाल देते है। मृदंग में आटा लगाने के पश्चात दमदार गंभीर स्वर निकलता है। वैसे मृदंग गंभीर नाद का ही वाद्य है। हर बार वादन पहले से पूर्व नया मिश्रण लगाया जाता है।

वैसे मृदंग गम्भीर नाद का ही वाद्य है।

मृदंग का नाद इतना जोरदार होता है कि गर्भिणी स्त्रियों के गर्भ तक गिर जाने का भय रहता है अतः गर्भिणी स्त्रियों को पास नहीं बैठना चाहिए।[1]

गजरा– पूडी को काठ के मुख पर चढ़ाने से पूर्व चमडे की डोरी से उसकी किनारी को भली भॉति गूंथा जाता है, जिससे पूडी खिंचते समय फट न जाये। पूड़ी के किनारे पर पट्टियों की यह किनारीं गजरा कहलाती है। जिसमें 20 से 24 छिद्र रखे जाते है। इन्ही छिद्रों को घर कहते है जिसमे से डोरियां पिरोकर पूडी कसी जाती है।[2]

बद्धी– पूडी को कसने के लिए चमडे की बनी रस्सी को बद्धी या दुहाल कहते है। यह बद्धी गजरे के छिद्र से होता हुआ गट्टे को दबाये नीचे तक कसे रखता हैं।

गट्टे– लकड़ी के टुकड़ो से निर्मित गुल्ली के भांति करीब चार इंच लम्बी व गोल होती है जिसे गट्टा या गुल्ली कहते है। इसे ही ऊपर नीचे करने से स्वर में अन्तर आता है।[3]

ये सभी पखावज के अंग है।

1– पखावज पारिजात ठाकुर भीखम सिंह गौतम पृ0सं0 44 प्रकाशक, संगीत प्रेस साउथ मलाका, इलाहाबाद।

2– स्वामी पागल दास जी पं0 राम शंकर दास सीमा जौहारी पृ0सं0 143 प्रकाशक महामाया सीमा जौहारी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

3– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियॉ अजय कुमार पृ0सं0 138 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

पखावज के वर्ण

पखावज पर अँगुलियो द्वारा आघात करने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे वर्ण बोल या पाटाक्षर कहते है।

बोल या वर्ण दो प्रकार के होते है।

बन्द बोल– जिन बोलो को बजाने के बाद स्वर या आस नही निकलती उन्हें बन्द बोल कहते है।

खुले बोल– जिन बोलो को बजाने के बाद स्वर या आस निकलती है उन्हें खुले बोल कहते है। मृदंग या पखावज पर बोल निकलने की तीन जगह है।

चाट, लवस्थान व मध्यस्थान

चाट– दाई ओर काठ पर चढ़े हुये पूड़ी के किनारे का नाम चाट है।

लवस्थान– स्याही और चाट के बीच की जगह को लवस्थान कहते है।

मध्यस्थान– पूडी पर चढी हुई स्याही के बीच की जगह मध्यस्थान कहलाती है।

मृदंग बजाते समय हाथों के विभिन्न भागों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाता था। उसके पाँच प्रकार थे जिनके लिए पंचपाणिप्रहत संज्ञा थी। जहाँ सम्पूर्ण हाथ का प्रयोग होता था उसे समपाणिप्रहत कहते थे। जहाँ केवल आधा पंजा ही उपयोग में आता था उसे अर्धपाणिप्रहत कहते थे। जहाँ हाथ का केवल पाव हिस्सा ही प्रयोग में लाया जाता था उसे अर्धार्धपाणिप्रहत कहा जाता था। हाथ के केवल किनारे का प्रयोग करने से पार्श्वपाणि हो जाता था और केवल पहली अँगुली का प्रयोग करने पर प्रदेशिनीजन्य नामक प्रहार होता था।[1]

पखावज के वर्ण के विषय में संगीतज्ञों में मतभेद है। किसी ने दस तो किसी ने सात, सोलह, चार वर्णो का वर्णन किया है।

पखावज परिजात में ठाकुर भीखम सिंह गौतम ने मृदंग के मुख्य चार वर्ण ता, दी, थु, ना, है इसे चौमुखी ब्रहमा के वर्ण कहते है व प्राचीन काल में, मुख्य आठ वर्ण ता, दी, ना, ते, टे दहिने से व, ध, क, थु, बाएं से निकलते थे वर्तमान काल में

1– संगीत बोध डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधन पराजये पृ0सं0 85 प्रकाशक मध्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

दाहिने से 18 का, गा, त, न, ड, दी, दां, दी, म, मा, ला, ला केटे तेटे, किट, तिटतिर व बाएं से 7 का ता ग गे घे थुं थुं दोनो हाथो की मिश्रण से 5 धा धी धे धे क्र आदि वर्ण है। शास्त्र वर्णित आदि वर्ण इस प्रकार है–

का, दी के टे दि ना थूडी दख्यिनी तध इ कू वाम धे धा क्ड़ान धे धेत दोऊ कर मृदंग सुख धाम।

शिव के डमरू से निकले हुए वर्ण इस प्रकार हैं।

1. अइउण, 2. ऋलुक, 3. एओइ, 4. ऐआच, 5. हयवरट्, 6.लशर, 7. जमङशानम्, 8. झभअ् 9. घढघव, 10. जबगडदश, 11. खफछठथचटतव, 12. शषसर, 13. कपय, 14. हल

इन्ही के आधार पर छन्द तथा तालों की रचना हुई है।[1]

घनश्याम पखावजी द्वारा रचित मृदंग के वर्ण इस प्रकार हैं।

गिनती	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
अक्षर	ता	तड	दी	धुं	ना	धा	ङ	ध्धे	दी	ग	खिर्र	झें	म
आश्रित	1 ग 2 क	ग	1 ण 2 क	1 धु 2 थी	1 लो	थेई	डां	धी	कि	टि	थर्र	0	

घनश्याम पखावजी के विभिन्न वर्ण और इन वर्णो को बजाने का तरीका भी मृदंग सागर में वर्णित किया है जो इस प्रकार हैं।

1. ता– दाहिने हाथ के चारों उंगली बराबर जोड़कर कनिष्ठिका उंगली की तरफ का जो हथेली का भाग है उसके पखावज की स्याही की पुड़ी के कुछ ऊपर की तरफ कुछ जोर से लगाकर आहिस्ते–आहिस्ते हटाई जावे कि उसमें से ज्योति पैदा हो जावे।

2. तऽ– पुड़ी की तरफ दायें हाथ से हथेली चारों उंगली समेत जो से देने से तऽ का आवाज होगा इसी को ग भी कहेंगे यही आवाज ग की भी है।

1– पखावज पारिजात ठाकुर भीखम सिंह गौतम पृ0सं0 46 मुद्रक, संगीत प्रेस साउथ मलाका, इलाहाबाद।

3. दी– स्याही की पुड़ी की तरफ दाहिने हाथ की चारों उंगली के अग्र भाग को मिला के छपका लगाने से दी शुद्ध बोलेगा और नौवें नम्बर पर फिर दी शुद्ध रखा है वो और यह एक है। परन्तु उसमें इतना ही फरक है कि वो दी तीन उंगली के अग्र भाग से छपका लगाकर निकाला जायेगा कारण कि उसके आगे का अक्षर ग (ट) है बहुत जल्दी निकालने की जरूरत पड़ती है उसमें जो पहले की उंगली उससे निकाल दी गयी है उसका ये ही सबक है कि इस निकाली गयी उंगली के अग्रभाग से ग (ट) निकलेगा। इसी से वो दी अलग दिखाई गई है।

4. थुं– बाएं हाथ से बांये की तरफ आधे हाथ से (चारों उगली) ढीले तौर पर मारने से थुं का आवाज होगा इसमें से धु–धी भी निकलता है।

5. ना– पुड़ी की तरफ दाहिने हाथ की पहली एक उंगली से अग्र भाग से ताकत देकर बोलने से न की आवाज पैदा होती है न सें लां की आवाज पैदा होती है।

6. धा– ये पखावज पर दोनों तरफ को बजाया जाता है दाहिने हाथ से ता की तरह और बांये हाथ से पुड़ी की तरफ दोनों हाथों की आवाज एक हाथ निकालने से ध बोलेगा। सम इसी से मालूम होता है और इसी तरह से थेई भी यही बोलेगा।

7. ङ– यह दाहिने हाथ से पुड़ी की तरफ अंगूठे के इशारे से बोलेगा। डा भी ये ही है।

8. ध्धे– दोनों हाथों की चारों उंगली दोनों तरफ पखावज पे जोर से दबाने से ध्धे बोलेगा। इसी तरह से धी शुद्ध भी बोलेगा।

9. दी तथा की– ये एक ही तरफ से बोलेगा। दाहिने हाथ से अंगूठे की तरफ की उंगली (तर्जनी) उसको अलग कर बाकी तीन उंगलियों का छपका स्याही के ऊपर पड़ने से दी तथा की शुद्ध बोलेगा।

10. ग तथा टि– दाहिने हाथ के अंगूठे के तरफ जो उंगली (जो नं0 9 को ऊपर उठा ली गई थी) उसी उगली से ग तथा टि बोलेगा। बाकी की वो तीनों उंगली स्याही पर से हटा ली जायेगी।

11. खिर्र– यह स्याही की तरफ अंगूठे को और बीच की उंगली दोनो को मिलाकर स्याही में ऊपर घसीट लायी जाती है। इसी तरह से थर्र भी बोलेगा।

12. झें तथा म– यह जो शुद्ध पखावज के दोनों तरफ दोनों हाथों को ढीले रखकर बजाने से शुद्ध बोलेगा और म इसी तरह से पुड़ी की तरफ एक हाथ से बोलता है।

अब इनके आगे और भी शुद्ध है कू–टोहों परन्तु यह तो बहुत कम बजाने में आते हैं शुद्ध ये तो बहुत जगह पर आते हैं परन्तु बजाने वाला फुरती वाला हो तो उतनी ले के अन्दाज में कू पाँचों उंगलियों को मिलाकर स्याह के ऊपर लगाने से बोलेगा और टाहो शब्द स्याही की पुड़ी के ऊपर खोणी से बजाने में बोला लेते है परन्तु यह तो राजाओं को खुश करने की बाते है जैसे दोनों हाथों से पुड़ी की तरफ धिलांग लगाते पुड़ी की तरफ कीडाण लगा लेते हैं और इसके आगे सलामी भी पखावज पर लेते हैं। यह सब रईसों को खुश करना है ऐसी बात नहीं है जिसको यहाँ पर विचार करके लिखा।[1]

<u>डॉ0 लालमणि मिश्र के अनुसार मृदंग के पाटाक्षर–</u>

मृदंग के पाटाक्षर

''दाहिने मुख से – 1. त, 2. धि, 3. थी, 4. ठें, 5. ने, 6. हें, 7. दे ये सात अक्षर होते हैं।

बाएं मुख से – 1. ठ, 2. ट, 3. त्या, 4. द, 5. ध, 6. ल

ये छह अक्षर होते हैं, पटह के ककार आदि लेकर सोलह पाटाक्षर होते है।

1– मृदंग सागर घनश्याम पखावजी पृ0सं0 12–14

अकारादि स्वरों के उदाहरण

1. जग, 2. झग, 3. टंकु, 4. थढड, 5. णड, 6. तत्, 7. थाँ, 8. दंदाँ, 9. धलां, 10. जग, 11. न नगि, 12. किट, 13. किड, 14. किण, 15. किट, 16. गिझि, 17. ढिंढिंक्र, 18. दिगि, 19. धिधि, 20. रिट, 21. कुकु, 22. कुन्दरिक, 23. तुतु, 24. क, 25. झे, 26. थे, 27. थों, 28. थ्रों, 29. थे, 30. थेय।

अकारादि स्वर के प्रति उदाहरण

1. झक, 2. तक, 3. धिक, 4. नक, 5. तुड, 6. नड, 7. किट दे, 8. थेय, 9. किरण्ट, 10. बल, 11. धल, 12. धीहं, 13. किट, 14. किडी, 15. गिड, 16. धिमि, 17. इगु इत्यादि।

बेलों को निकालने की रीति

त– अंगूठा, कनिष्ठा तथा अनामिका दबाकर बजाने से 'त' निकलेगा।

धि– वाम मुख में हथेली से तथा दाहिने मुख से मध्य में टेढ़ी उंगली से ताड़न करने पर 'धी' निकलेगा।

थी– अंगूठा छोड़कर दाहिने मुख पर अन्य उंगलियों से छूट के साथ ताड़न करने पर 'थो' निकलेगा।

न– मृदंग के मुख के किनारे अनामिका के अगले भाग से ताड़न करने पर 'न' निकलेगा।

कि– अनामिका तथा मध्यमा को मिलाकर पताका रीति से प्रहार करने पर 'कि' उत्पन्न होगा।

ट– अनामिका तथा मध्यमा द्वारा सिखर रीति से बजाने पर 'ट' उत्पन्न होगा। (आधुनिक समय में तर्जनी द्वारा स्याही के मध्य भाग पर ताड़न करने से 'ट' शब्द निकलना माना जाता है)।

इसी किट शब्द के पहले के अक्षरों को छोड़कर इनका प्रस्तार किया जाता है जिनके उदाहरण निम्न हैं–

थक्किट, धिक्किट, थोंक्किट, नक्टि, तथाक्टि, धिद्धिक्किट, थो, थोंक्टि, नंनाक्टि, तत्ताथक्किट, क्टिक्टिं।

द्धि द्ध धि कि ट क्टिक्टि। थों थों थों थों क्टि क्टि

कि कि नं नाँ नाँ क्टि क्टि क्टि ततत्त तथक्क्टि किटक्टिक्टि

कुं– हाथ को गोल करके कनिश्ठा से मृदंग के मुख का चाम स्पर्श करके ताड़न करने से 'कुं' शब्द निकलता है।

र– मूठ से घिसते हुए ताड़न करने से र शब्द निकलता है।

कर्तरीगमक जब फैली हुई उंगलियों से पताका की तरह ताड़न किया जाता है तब उसे कर्तरीगमक कहते है।[1]

रामशंकर पागलदास के अनुसार मृदंग में ता, दी, ना, ते, टे, घ और क सात वर्णो को बजाया जाता है।

मृदंग ध्वन्यात्मक वाद्य है। इसमें जो वर्ण जहाँ निश्चित किया जाएगा, वह वही ठीक जान पडेगा, फिर भी निर्धारित नियम के अनुसार अभ्यास करना अधिक लाभप्रद होगा। मृदंग के सात वर्णो में बाएँ का ध और दाहिने का ट ये दोनों वर्ण अचल है जो अपना स्थान कभी नहीं छोड़ते। शेष पाँच वर्ण चलायमान हैं जिनका स्थानांतर होता ही रहता है। आवश्यकता पड़ने पर इन पाँच वर्णो का प्रयोग दाएँ और बाएँ दोनो और से किया जाता है क्योकि ताल–वाद्यों में सम बजाने की प्रथा अधिक प्रचलित है।[2]

ता : इसका निकास गोकर्ण–मुद्रा (गाय के कान जैसी मुद्रा) से होता है। हथेली के निचले हिस्से से दाहिने पुडी पर पूरा आघात करना चाहिए, तभी 'ता' का निकास होगा, जिसे 'थपिया' अथवा 'थाप' कहते हैं। 'ता' से 'लां, रां और ऊँ आदि भी बजते हैं।

दी : चारों उँगलियों को सीधी करके दाहिने की स्याही पर खुला आघात करने से बजता है, ल, व, ह और ग आदि में भी उपयोगी है।

1– भारतीय संगीत वाद्य डॉ0 लाल मणि मिश्र पृ0सं0 204, 205, 207 प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

2– संगीत पत्रिका वाद्य वादन अंक 1975 ज0 फ0 स्वामी पागल दास पृ0सं0 173 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश।

ना : दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली के अग्रभाग से चाँट पर मारना चाहिए।

ते : अनामिका तथा मध्यमा – दोनों को साथ–साथ दाहिने की स्याही पर बंद मारने से बजता है।

टे : केवल तर्जनी अँगुली से स्याही पर बंद आघात करना चाहिए, समयानुसार 'तेटे को 'टेते' को 'तेट' पढ़ने की प्रथा भी प्रचलित है।

घ : आटेवाली पुड़ी पर खुला आघात करना चाहिए। ग, घ और थुन् आदि का निकास एक ही समान होता है।

क : बाएँ हिस्से के आटे वाले भाग पर बंद आघात करना चाहिए। त, कत् भी 'क' के समान निकलते हैं। (जिस प्रकार एक मछली जल में तैरती हुई पूँछ को बड़े जोर से पटकती है, ठीक उसी प्रकार 'क' का निकास होना चाहिए।[1]

पखावज के वर्ण और उनको निकालने की विधि

'दी'

दाहिने हाथ की हथेली को एक साथ मिलाकरं पखावज के दायें मुख पर स्याही पर आघात करने से **'दी'** शब्द की ध्वनि उत्पन्न होती है।

1– संगीत वाद्य वादन 1975 जनवरी, फरवरी स्वामी पागल दास पृ0सं0 173, 174 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस।

'ना'

दाहिनी चांटी पर तर्जनी उंगली से सब हाथ गजरे का सहारा लें या अलग से मारने पर ना वर्ण बजेगा।

'धे'

पखावज के बायें भाग पर बायें हाथ के अग्रभाग से आघात किया जाये, तब इससे **'धे'** शब्द की ध्वनि उत्पन्न होती है।

थाप का 'क'

कनिष्ठा अँगुली से ऊपर की ओर आघात करने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह **'क'** की ध्वनि उत्पन्न होती है।

'ट'

अँगूठे के बादव वाली अँगुली से स्याही पर आघात करने से **'ट'** शब्द की उत्पन्न होता है।

'ते'

पखावज के दाहिने पर कनिष्ठिका अनामिका, मध्यमांगुली उंगलियों को जोड़कर स्याही के मघ्य पर प्रहार करने से **'ते'** की ध्वनि उत्पन्न होती है।

'ता'

दाहिने हाथ को गोकर्ण के समान बनाकर पखावज के दाये मुख पर आद्यात करने से ता, की ध्वनि उत्पन्न होती है।

'थू'

पखावज के बायें भाग पर खुला प्रहार करने से **'थू'** शब्द की ध्वनि उत्पन्न होती है।

'धा'

ता एवं धे वर्णो को एक साथ बजाने पर **'धा'** शब्द की ध्वनि उत्पन्न होती है।

1– इस सभी चित्रों के लिए श्री संगीत पाठक का विशेष आभार प्रकट करती हूँ।

पखावज के ताल

पखावज की ताल के विषय में चर्चा करने से पहले ताल क्या है यह जानना आवश्यक है।

ताल

ताल संगीत का आधार है। ताल बिना संगीत निरर्थक अरूचिकर नीरस लगता है। ताल संगीत को गति लयबद्धता प्रदान करता है। संगीत विद्धानो ने ताल को संगीत का प्राण कहते है। ताल के विषय में जानकारी हमें प्राचीन काल से प्राप्त होती आई है ताल की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन संगीत ग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है।

शम्भो रूत्पद्यते नादो नादादुत्यपद्यतेमनः ।
मनसोजायते कालः सकालस्तालसंज्ञक।।

(भरत कल्पलतामंजरी)

अर्थात श्री शंकर भगवान् द्वारा नाद अवतरित हुआ नाद से मन तथा मन से काल एवं काल ही ताल शब्द से प्रख्यात है।[1]

तीसरी शताब्दी मे भरत कृत नाट्यशास्त्र की रचना की गई, नाट्यशास्त्र में इकतीसवें अध्याय में आचार्य भरत ने ताल के विषय में वर्णन किया है जो इस प्रकार है–

''यस्तु ताल न जानाति न सा गाता न वादकः।
तस्मात्, सर्वप्रयत्नेन कार्य तालावधारणाम्।

(नाट्य शास्त्र)

अर्थात ताल को न जानने वाला गायक या वादक कहलाने का अधिकारी नही है।[2]

1– मृदंग तबला प्रभाकर द्वितीय भाग भगवानदास मृदंगाचार्य, श्री राम शंकरदास पृष्ठ सं0 9 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस उ0प्र0।

2– भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा पृष्ठ सं0 113 प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशक।

ताल शब्द तल् धातु से बना है। तल का अर्थ उस भाग से होता है जिसके बल पर कोई वस्तु टिकी या स्थित रहती है।[1]

चौथी सदी में कोहल ने ताल लक्षण नामक ग्रन्थ की रचना की। जिसमें ताल उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा श्लोक इस प्रकार है।

''ताकारः शंकरः प्रोन्तो लकारः पार्वती स्मृताः।

''शिव शाक्ति समायोगात् तालइत्यभिधीयते।

अर्थात भूतनाथ के ताण्डव से ता का प्रादुर्भाव हुआ तथा श्री पार्वती जी के लास्य से ल प्रकट हुआ। तात्पर्य यह है कि शिव तथा शक्ति के संयोग से ताल निर्मित हुआ।[2]

अमरकोष में उल्लेखित है तालः कालक्रियामानम् ! ताल संगीत को एक निश्चित नियम या समय के बन्धन में बाँधता है।[3]

संगीत रत्नाकर के पांचवे अध्याय में ताल शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गयी है

''तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धमि स्मृतः।

गीत वाद्यं तथा नृतं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

''स्थिरता में स्थापित होने वाले तल् धातु मे अ प्रत्यय लगाकर ताल शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। गायन वादन तथा नृत्य को ताल से ही स्थिरता प्राप्त होती है। लघु आदि प्रमाण की क्रियाओं द्वारा मापा जाने वाला और गीतादि के परिमाणो को धारण करने वाला ताल ही होता है।[4]

1– संगीत में ताल वाद्यो की उपयोगिता डॉ0 चित्रा गुप्ता पृ0सं0 24 प्रकाशक राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

2– मृदंग तबला प्रभाकर द्वितीय भाग भगवानदास मृदंगाचार्य, श्री राम शंकर दास पृष्ठ संख्या 9 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0।

3– भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 अरूण कुमार सेन पृ0सं0 49 प्रकाशक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

4– ताल वाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृष्ठ सं0 29 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

इस प्रकार ताल का जन्म स्वर से पहले हुआ। इसके कई प्रमाण प्राचीन गुफाओं मे मिलता है, जहां चित्रो मे लय बद्ध तरीके से कार्य करते मानव चित्र अंकित है वैदिक काल में श्लोको को हाथो द्वारा ताल देकर उच्चारण किया जाता था।

प्राचीन काल में सगीत के दो प्रकार निबन्ध संगीत तथा अनिबन्धा संगीत थे। निबन्ध जो ताल लय में जैसा गायन जहां निबद्ध संगीत मे रस भाव, आनन्द की प्राप्ति होती है। वही अनिबद्ध संगीत में इन सब चीजो का अभाव होता है।

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने पांच मुख्य तालो की रचना की थी। ताल की इस प्रकार परिभाषा दी।

''कला, पात और लय से युक्त काल विभाग या परिमाणात्मक प्रमाण जो धन वाद्य वर्ग मे आता है ताल कहलाता है।[1]

आचार्य भरत द्वारा बताये गये पांचो ताल

चच्चव्पुटा	ऽ ऽ । ऽ स श ता श	– मात्रा 8
चाचपुटः	ऽ । । ऽ श ता श ता	– मात्रा 8
षट्पितापुत्रकाः	ऽ । ऽ ऽ । ऽ स ता श ता श ता	– मात्रा 12
संपर्केष्टकाः	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ता श ता श ता	– मात्रा 12
उदघट्ट	ऽ ऽ ऽ नि श श	– मात्रा 6 –[2]

ताल के दो भेद बताये है। चतुरत्र त्रयस्त्र नारदकृत संगीत मकरंद मे 101 तालो की परिभाषा सहित वर्णन है। शारगदेव ने संगीत रत्नकर में 120 देशी तालों का वर्णन किया है। ताल के सम, विषम ताल के पक्ष में एक कथा इस प्रकार हैं–

1– ताल वाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृष्ठ सं0 29 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2– ताल वाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृष्ठ सं0 32 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

''देवता तथा दैत्यो ने परस्पर सहयोग से समुद्र का मंथन किया जिससे अमृत के साथ चौदह रत्नो की उत्पत्ति हुई, अमृत को पिपासा दृष्टि से देखते हुए देव दानव उछल–उछल कर नृत्य करने लगे। जिसमें देवता चाल की समता का ध्यान रखते हुए पदाघात करने लगे जो दो, चार, आठ, सोलह सम तालों पर आधारित थे। दैत्यों ने भी विषम स्वभावानुसार पदाघात किया जो विषम ताल के प्रतीक थे अर्थात तीन, पांच, सात, नौ, ग्यारह आदि के उत्पादक दैत्य ही सिद्ध हुए।[1]

डॉ0 शरच्चन्द्र पराजये के अनुसार लय के जन्म के साथ ही उसको दर्शाने के लिए किसी क्रिया की आवश्यकता पडी और ताल का जन्म हुआ। लय को काल तथा क्रिया से नियन्त्रित करने पर ताल का उद्‌भव होता है। लय स्वयं एक व्यापक एवं अखण्डित क्रिया से दर्शाना ही ताल कहलाता है।[2]

इसी सम्बन्ध में डॉ0 अरूण कुमार सेन के अनुसार ताल संगीत को एक निश्चित समय या नियम के बन्धन में बांधता है, ताल संगीत में विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चलन शैलियों का विकास करता है उससे संगीत के समय की रक्षा होती है।[3]

श्री नरहरि चक्रवर्ती ने भक्ति रत्नाकर में लिखा है कि जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है वैसे ही तालविहीन संगीत होता है।

''गीते तालयुक्त ताल बिना शुद्धि नय।
जैछे कर्णधार बिना नौका तैछे हम।[4]

हिन्दी के महान कवि निराला ने अपनी रचनाओं मे ताल शब्द का प्रयोग किया है।

और देखूँगा देते ताल
कर तल पल्लव दल से
निर्जन वन से सभी तमाल[5]

1– मृदंग तबला प्रभाकर द्वितीय भाग भगवानदास मृदंगाचार्य, श्री राम शंकरदास पृष्ठ सं0 11 प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस उ0प्र0।
2– संगीत बोध डॉ0 शरच्चन्द्र श्री धर पराजये पृ0सं0 72 प्रकाशक मध्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3– भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा पृष्ठ सं0 115 प्रकाशक प्रतिभा।
4– भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा पृष्ठ सं0 114 प्रकाशक प्रतिभा।
5– संगीत में ताल वाद्यो की उपयोगिता डॉ0 चित्रा गुप्ता पृ0सं0 26 प्रकाशक राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।

इस प्रकार संगीत में गायन, वादन, नृत्य तीनो संगीत को ताल ही गति प्रदान करता है आज में दो संगीत पद्धतियां प्रचलित है। 1. उत्तर भारतीय संगीत
3. कर्नाटक या दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति। दोनो पद्धति को मूल आधार एक है किन्तु आधुनिक स्वरूप भिन्न है। जहां कर्नाटक संगीत सप्त सूलादि तालम् पर आधारित है इन्ही सात तालों से जाति भेद, गति भेद करके अनेको तालो का निर्माण किया जाता है। यहां तालो की संख्या निश्चित है वही उत्तर भारतीय संगीत मे तालों का कोई विशेष वर्गीकरण नही किया गया। यहां तालो की संख्या अनिश्चित है ताल के ठेका के सम्बन्ध में डॉ0 मनोहर भालचन्द्र राव मराठे के अनुसार – संगीत पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पडा। इसी काल में भारतीय संगीत मे लय धारणा के लिए धन वाद्यों का स्थान अवनद्ध वाद्यो ने लेना प्रारम्भ कर दिया होगा। इसका स्पष्ट कारण तथा समय ज्ञात नही हो पाया है। अवनद्ध वाद्यो के ऊपर ताल के ठेको का प्रारम्भ 13वीं 14वीं सदी में ही हो गया था। अल्लाउदीन खिलजी के दरबारी कलाकार अमीर खुसरो ने पश्तो, कब्बाली जत, सवारी, आड़ाचार झूमरा आदि तालो का तथा उनके ठेको का अविष्कार किया।[1]

आगे पखावज की तालो के विषय में यह कहा है – वही प्राचीन गीत प्रकारों पर आधारित ध्रुवपद गीत शैली का निर्माण प्रचलन एवं प्रसार तत्कालीन ग्वालियर शासक राजा मानसिंह तोमर ने किया है। ध्रुवपद भारत वर्ष का ओज पूर्ण गायन प्रकार है जिसके माध्यम से वीर एवं शांत रस प्रधान गायकी का गायन किया जाता है ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन प्रबन्ध गायन शैली के आधार पर ही (जिसका ख्यालादि गायकी के कारण लोप सा हो गया था) ध्रुवपद गायन प्रचार मे लाया गया। ध्रुवपद के लिए उसके स्वरूपानुसार खुले बोल के ठेके चौताल, सूलताल आदि प्रचार मे आये।[2]

1– ताल वाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृष्ठ सं0 63 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।
2– ताल वाद्य शास्त्र डॉ0 मनोहर भालचन्द्रराव मराठे पृष्ठ सं0 64 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

इस प्रकार ताल के ठेका निर्माण, प्रचार प्रसार हुआ। ताल का कार्य संगीत को निश्चित समय से बांधना है जिससे संगीत मनोरंजक मधुर लगता है। इसलिये संगीत विद्वानो ने ताल विहीन संगीत को आरण्यक संगीत कहा है।

पखावज के ताल

तीवरा– इसे तेव्रा, गीतंगी ताल भी कहते है यह पखावज की प्रचलित ताल है, तीवरा ताल का स्वरूप 3,2,2 है इस ताल में तीन विभाग है खाली का विभाग नहीं है, यह विषम पद ताल है ''भातखण्डेजी के प्रिय मित्र अप्पा तुलसी ने अपने अभिनवताल मंजरी में उल्लेख किया है कि तीव्रा ताल रत्नाकरकालीन अन्तर क्रीडा के अनुरूप है किन्तु दोनो के छन्द रूपों में असमानता है अन्तर क्रीड़ा में 2/2/3 है जबकि तीव्रा में 3/2/2 है''[1] इस ताल का प्रयोग पखावज का स्वतन्त्र, वादन के अतिरिक्त ध्रपुद अंग की गायन शैली के साथ संगत में भी किया जाता है, यह मध्य लय की ताल है। तीवरा ताल में परन, पड़ार, चक्करदार, तिहाई रेला आदि बजाया जाता हैं।

मात्रा 7, विभाग 3, ताली 1, 4 और 6 पर

ठेका

धा दि ता । तेटे कता । गति गन[2] ।

X 2 3

बंसत ताल– यह ताल अप्रचलित व प्राचीन ताल है। बंसत ताल नौ और अठारह दोनो मात्राओं में पाई जाती है ये पखावज की ताल होने के कारण इसके बोल मुख्यतः पखावज के है इसकी गणना कठिन तालो में की जाती है।

मात्रा–9, विभाग–9, ताली 1, 2, 3, 4, 6, 8 पर है और खाली 5, 7, 9 पर

ठेका –

1– भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 अरूण कुमार सेन पृ0सं0 197 प्रकाशक मध्य प्रदेश इलाहाबाद हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

2– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 214 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद

धा । दिं । ता । धेत् । ता । तिट् । कत्त् । गदि् । गन् ।

X 2 3 4 0 5 0 6 0

इसका दूसरा प्रकार–

धा ऽ । कि ट । त कि । ट ता । धा ऽ । ति ट । क ता । ग दि । ग न।[1]

X 2 3 4 0 5 0 6 0

सूलताल, सूलफाक ताल– इस ताल के कई नाम प्रचलित है सूलताल, सूलफाक व सूलफाखता ताल। ''किसी–किसी संस्कृत ग्रन्थ में इसे कंकनक या सात्ति ताल भी कहा गया है''[2] यह पखावज की प्रचलित ताल है पखावज पर स्वतंत्र–वादन के साथ ध्रुपद अंग की गायन शैली के साथ संगत भी किया जाता है। यह सम पदी ताल है इसमें परन, पड़ाल, रेला और तिहाई बजाई जाती है। इस ताल का छंद स्वरूप 2/2/2/2/2 है। ताल परिचय भाग–3 में आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव ने लिखा है ''आचार्य बृहस्पति ने अदन–उल–मूसीकी नामक पुस्तक की पृष्ठ संख्या 194 का उल्लेख करते हुए अपनी पुस्तक संगीत चिंतामणि में इस ताल का वर्णन करते हुए लिखा है कि– ''उसूले फाख्ता'' उसूले और फाख्ता दोनो अरबी भाषा के शब्द है। उसूल का अर्थ सिद्धान्त और पाख्ता का अर्थ पंडुक या गुलगुचया नामक पक्षी हैं, इस पक्षी की बोली के अनुसार इस ताल की रचना इस प्रकार हुई है:–

कू ऽ । ऽ ऽ । कू ऽ । कू ऽ । ऽ ऽ ।

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

कालंतर मे उसूले फाखता शब्द बिगड़ कर सूलफाख्ता या सूलताल हो गया। मुहम्मद करम इमाम ने अमीर खुसरो द्वारा रचित सत्रह तालों में इस ताल की भी गणना की है।[3]

1– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 218, 219 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद

2– भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 अरूण कुमार सेन पृ0सं0 196 प्रकाशक मध्य प्रदेश इलाहाबाद हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

3– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 220 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद

मात्रा–10, विभाग–5, ताली 1, 5, 7 पर खाली 3, 9

ठेका –

धा धा । दि ता । किट धा । तेटे कता । गदि गन ।

X 0 2 3 0

झपताल–

दोहा– खण्ड जाति दस मात्रा, एक खाली त्रय ताल।
कोटि काम लखि संकुचित, शुचि सुन्दर झपताल।।[1]

यह तबला की एक प्रचलित एवं लोकप्रिय ताल है। ''उल्लेखनीय है कि ध्रुपद गायन शैली के एक विशेष प्रकार का नाम है सादरा है जिसके साथ सदा झपताल ही बजती है। यह मुख्यतः मध्य लय की ताल है।[2]

दिल्ली के निकट एक स्थान का नाम शाहदरा है। यहाँ के निवासी दो भाईयों ने शाहदरा नामक ध्रुपद शैली में एक विधा सादरा के नाम से चलाई थी।

मात्रा–10, विभाग–4, ताली 1, 3, 8 और 6 पर

पखावज पर झपताल का ठेका इस प्रकार मिलता है।

पहला प्रकार

धा ऽ । दिं ता धे । त्ता ऽ । कत्त गदि गन ।

X 2 0 3

दूसरा प्रकार

धा किट । धा धा किट । ता किट । कत्त गदि गन ।[3]

X 2 0 3

1– मृदंग तबला प्रभाकर द्वितीय भाग भगवानदास, मृदंगाचार्य श्री रामशंकरदास पृ0सं0 21 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0

2– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 219 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद

3– पखावज पारिजात ठाकुर भीखम सिंह गौतम पृ0सं0 77 प्रकाशक संगीत प्रेस साउथ मलाका इलाहाबाद।

रूद्र ताल– रूद्र की गणना प्राचीन तालो में की जाती है। यह समपदी व मध्य लय की ताल हैं। इस ताल में स्वतन्त्र वादन भी किया जाता है। ''रूद्र संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ एक प्रकार के गणदेवता है जिनकी कुल संख्या ग्यारह है। इसीलिए रूद्र ताल की मात्रा संख्या ग्यारह सार्थक है। रूद्र ताल एक प्राचीन, अप्रचलित और क्लिष्ट ताल है। कभी–कभी कुछ गुणी कलाकार इस ताल में स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करते है।''[1]

मात्रा–11, विभाग–11, ताली 1, 3, 4, 5, 7, 8, 9, 10 तथा खाली 2, 6, 11

ठेका –

धा । त त । धा । तिरकिट । धी । ना । तिरकिट । तू । ना ।

X 0 2 3 4 0 5 6 7

कत्त । ता ।[2]

8 0

कुम्भ ताल– यह एक प्राचीन अप्रचलित और क्लिष्ट ताल है। इसके ठेके के बोल से इसे पखावज की ताल होने का संकेत मिलता है। इसका प्रयोग प्राचीन ध्रुपद अंग की गायकी के साथ किया जा सकता है। कभी–कभी कुछ गुणीं कलाकार कुम्भ ताल में स्वतंन्त्र वादन भी प्रस्तुत करते है। यह मध्यलय में बजाने योग्य समपद ताल है।[3]

मात्रा–11, विभाग–11, ताली 1, 3, 4, 5, 7, 8, 9, 10 तथा खाली 2, 6, 11 पर।

धा । धिं । तेटे । कता । धा । धि । नक । तेटे । कता । गदि । गन ।[4]

X 0 2 3 4 0 5 6 7 8 0

1– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 220, 221 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

2– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 220 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

3– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 221, 222 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

4– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 221 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

मणि ताल– मणि लाल ताल भी क्लिष्ट और अप्रचलित तालों के अन्तर्गत आता है। प्रयोग में कम आने के बावजूद यह पखावज और तबला दोनो पर समान रूप से प्रयुक्त होने में सक्षम है। इसकी गति मध्य और द्रुत है।[1]

मात्रा–11, विभाग–4, ताली 4 खाली 4 नही।

1– धा दीं ता । धेत ता । धागे नधा त्रक । धागे नधा त्रक । धा

X 2 3 4 X

2– धा कि ट । कि ट । धा कि ट । त कि ट । धा

X 2 3 4 X

अष्टमंगल ताल– अष्टमंगल पखावज का प्राचीन किन्तु अब अल्प प्रचलित ताल है। इस ताल द्वारा ध्रुवपद शैली की गायन की संगति एवं पखावज पर स्वतन्त्र वादन किया जाता था कुछ लोग इसे 22 मात्राओं का मानते है तो कुछ 11 मात्रे का ताल विधान के अनुसार चूंकि एक विभाग में कम से कम 2 मात्राएँ होनी चाहिए, अतः मात्रा का अष्टमंगल ही उचित प्रतीत होता है, लेकिन आधुनिक वादकों ने इसकी संख्या 11 कर दी है।[2]

मात्रा–11, विभाग–4, ताली 1, 3, 4, 6, 7, 9, 10 और 11 पर तथा खाली 2, 5 और 8 पर।

धा । ना । धी । धी। ना । धी । धी। ना । धागे । नधा । त्रक ।

X 0 2 3 0 4 5 0 6 7 8

दूसरा मत

मात्रा–22, विभाग–11, ताली 1, 5, 7, 11, 13, 17, 19 और 21 पर तथा खाली 3, 9 और 15 पर।

धा ऽ । कि ट । त क । धु म । कि ट । त क । धे ऽ । ता ऽ । त क ।

X 0 2 3 0 4 5 0 6

धा दि । ग न ।[3]

7 8

1– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 130 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 129 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

3– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 222 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

चार ताल–

द्वादश तिय मुस्कात मृदु , ब्रह्म रूप जग पाल।
चारताल द्वै काल युत , सुकवि भनत चौताल।।[1]

(पागलदास)

''ध्रुपद गायकी और मृदंग का द्वादसा मात्रा का चौताल। एक, पाँच, नव, ग्यारह ताली तीन, सात पर निश्चित खाली। गुणियों ने निश्चित कर दी है षट अंगों में इसके भाग। बहुधा मध्य लय में बजता चौताले का ठेका जान।[2]

उत्तर भारत के प्राचीन तालों में चारताल का आज भी खूब प्रयोग होता है। बारह मात्रा के इस सम पद ताल में चार ताली होने के कारण इसका नाम चार ताल सार्थक जाना पड़ता है। इस ताल के कई नाम पाये जाते है। जैसे– चारताल, चौताल, चन्दनाग, मंजी बहट ताल और बंगाल में बड़ा चौताल। इसका फारसी नाम चहार जर्ब भी सार्थक नाम है। डॉ0 अरून कुमार सेन के अनुसार इस ताल का प्रचलन गोपाल, बैजू, बावरा व तानसेन के युग में भी था। सुबोध नन्दी कृत बंगला पुस्तक भारतीय संगीत ताल ओ छन्द के पृष्ठ 57 में अंकित संगीत भाष्य के अनुसार द्वापर युग में इसे रास ताल तथा मोहन ताल के नाम से जाना जाता था।[3]

ध्रुपद गायकी के साथ इस ताल का अधिक प्रयोग होने के कारण कुछ लोग इसे ध्रुपद ताल के नाम से भी संबोधित करते हैं। जिस प्रकार तबले के स्वतंत्र वादन के लिये तीनताल को उचित माना गया है ठीक उसी प्रकार से पखावज में स्वतन्त्र वादन के लिए चार ताल के उपयुक्त माना गया है।[4]

स्वतन्त्र वादन में तिहाई, परन रेला, पड़ार आदि बजाया जाता है। यह मध्य लय में बजाया जाता है तथा इसकी जाति चतुरत्र है।

1– मृदंग तबला प्रभाकर भाग द्वितीय श्री भगवान दास, श्री राम शंकरदास पृ0सं0 31 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0।
2– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 104 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 224 प्रकाशक रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।
4– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 104 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

ताल का छन्द 2/2/2/2/2/2 हैं।

मात्रा–12, विभाग–6, ताली 1, 5, 9 और खाली 3, 7 पर।

ठेका

धा धा । दिं ता । किट धा । दि ता । तेटे कता । गदि गन ।[1]

X 0 2 0 3 4

धमार – कनक वरन शुचि शुभ्र तन, तिय संग खेलत फाग।
विहंसि परस्पर अंकले, दरसत भरि अनुराग।।
दस श्रुति (चौदह) अनुचरि संग में, त्रिपहर करत बिहार।
ब्रह्म रूप प्रद ब्रह्म, सुखद सुसरस धमार।।[2]

(पागलदास)

ताल धमार मृदंग की शोभा गज सम इसकी चाल निराली। चारचाल से अधिक तो मात्रा पर है चार विभागों वाली। एक छः ग्यारह पर ताली और निश्चित है आठ पर खाली। संगत हो या सोलो वदन सभी में है यह अति निराली।[3]

यह भी तालशास्त्रियों के मतानुसार एक प्राचीन ताल है। बंगाल के संगीत नायक गोपेश्वर बन्दोपाध्याय के मतानुसार श्रीकृष्ण कला में होली ताल नामक एक विशिष्ट ताल था। होली प्रसंग के सब गीत उसी ताल में निबद्ध होते थे। मध्य काल में यह ताल अप्रचलित रहा और सन् 1738 में मुहम्मद शाह (द्वितीय) के काल में सदारंग ने पुनः इस ताल को धमार नाम देकर प्रचलित किया।[4]

यह विषम पद की ताल है इसका छन्द रूप 5/2/3/4 है इसका प्रयोग पखावज पर स्वतंत्र वादन में किया जाता है तथा धमार गायन, वीणा वादन और नृत्य

1– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 104 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2– मृदंग तबला प्रभाकर भाग प्रथम श्री भगवान दास, श्री राम शंकरदास पृ0सं0 33 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0।

3– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 109 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

4– भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 अरूण कुमार सेन पृ0सं0 196 प्रकाशक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

के साथ संगत के रूप में करते हैं। इस ताल में परन, पड़ाल, रेला, तिहाई चक्रदार तिहाई आदि बजाया जाता है।

मात्रा–14, विभाग–4, ताली 1, 6, 11 खाली 8

ठेका

क धे टे धे टे । धा ऽ । ग ते टे । ते टे ता ऽ

X 2 0 3

गजझंपा – एक खाली त्रै ताल मंह, मात्रा पन्दरह जान।
शुभ आचरण स सिद्धि दा, गज भंपा गुणवान।।[1]

(पागलदास)

यह मंदृग की एक अप्रचलित ताल है। असम मात्रा की ताल होने के कारण गजझप्पा ताल की गणना क्लिष्ट तालों में की जाती है। इसके बोल खुले है। यह ध्रुपद अंग की गायन शैली के साथ संगत करने की एक उपयुक्त ताल है। विद्वान कलाकार इसमें एकल – वादन भी कर सकते है।[2]

जिस प्रकार तबला वादन के लिये पंचम सवारी उपयुक्त माना गया है, ठीक उसी प्रकार पखावज के लिये गजझप्पा ताल को उपयुक्त माना गया है। यह ताल 15 मात्रे की विषमपद ताल है तथा इसका छन्द स्वरूप 4, 4, 3, 4 का है।

मात्रा–15, विभाग–4, ताली 1, 5, 12 खाली 9 पर

ठेका

धा धिन नक तक । धा धिन नक तक ।

X 2

तिन नक तक । तेटे कत गदि गन ।[3]

0 3

1– मृदंग तबला प्रभाकर भाग द्वितीय श्री राम शंकरदास पृ0सं0 64 प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0।

2– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 230 प्रकाशन रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

3– पखावज की उत्पत्ति विकास एवं वादन शैलियाँ डॉ0 अजय कुमार पृ0सं0 121 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

आदिताल/त्रिताल– जैसा कि नाम है आदि/यह पखावज की पुरानी ताल है। इसे मूल ताल भी कहते है। इस ताल का प्रयोग पखावज पर करते है। 16 मात्रा की इस ताल का स्वरूप तीनताल के समान है।

मात्रा–16, विभाग–4, ताली 1, 5, 3 खाली 9

ठेका

धा धेट धेट धा	।	ता धेट धेट धा	।
X		2	
कत तेट तेट ता	।	तेटे कत गदि गन	।
0		3	

शिखर ताल– शिखर ताल ध्रुपद शैली की गायकी के साथ संगत करने एवं मृदंग पर स्वतंत्र वादन के लिए उपयुक्त ताल है। ध्रुपद गायन व मृदंग वादन का प्रचार कम होने के साथ ही इस ताल का प्रचलन भी कम हो गया है। सत्रह मात्रा के इस विसम पद ताल में खाली का कोई विभाग नही है। यह मध्य लय में बजाने योग्य ताल है।

इसका छन्द रूप 4/4/3/2/4 है।[1]

मात्रा–17, विभाग–5, ताली 1, 5, 9, 12 और 14 पर

धा त्रक धिन नक	।	थुं गा धिन नक	।		
X		2			
धुम किट तक	।	धेत धा	।	तेटे कता गदि गन	।[2]
3		4		5	

मत्तताल– मत्तताल पखावज का अत्यन्त प्राचीन ताल है। लेकिन आज इस ताल की गणना अल्प प्रचलित तालों में होती है। पहले मत्तताल का प्रयोग ध्रुवपद गायन की संगति एवं स्वतन्त्र पखावज वादन के लिए होता था। आज मत्तताल में ध्रुवपद सुनने को नही मिलते है। यदा–कदा स्वतन्त्र वादन सुनने को जरूर मिल

1– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 235 प्रकाशन रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

2– वही

जाता है। यह चतस्त्र जाति का समपद ताल है।[1]

कुछ लोग मत्त ताल को 9 मात्रे भी मानते है किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। 18 मात्रे के इस ताल में 9 विभाग 6 ताली और 3 खाली है। इसके तीन प्रमुख प्रकार नीचे दिए जा रहे है।

1– धा ऽ । धि ड. । न ग । धि ड़ । न ग । ते टे । क त । ग दि । ग न । धा

X 0 2 3 0 4 5 6 0 X

2– धी ऽ । ना ऽ । धीं तिरकिट । धी ना । तू ना । क त्ता । तिरकिट धी ।

X 0 2 3 0 4 5

ना धी । धी ना । धी

6 0 X

3– धी ऽ । कि ट । त क । धि ऽ । त ऽ । त क । धिं ऽ । ग दि । ग न । धा[2]

X 0 2 3 0 4 5 6 0 X

लक्ष्मीताल– प्राचीन किन्तु अप्रचलित और इसीलिए विवादास्पद तालों में गिना जाने वाला मूलतः पखावज का ताल है। लक्ष्मी ताल पहले यह ध्रुवपद गायन की संगति के काम आता था किन्तु आजकल स्वतन्त्र पखावज वादन के लिए ही सीमित होकर रह गया है।[3]

मात्रा 18, विभाग 18, ताली 1, 2, 3, 5, 6, 7, 9, 10, 11, 12, 14, 15, 16 और 17 पर तथा खाली 4, 8 और 18 पर।

धिना । धिंध । तिरकिट । धिंना । धिंधा । तिरकिट । धाधा । तिरकिट । धाधा ।

X 2 3 0 4 5 6 0 7

तिरकिट । धिंना । धिंधा । तिरकिट । तू ना । किड़नग । तागे । ताड । तिरकिट ।

8 9 10 11 12 13 14 15 0

1– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 142 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 142 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

3– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 140 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

दूसरा प्रकार

धिं । तेत । धेत । धेत् । दिं । ता । तिट । कत । धा । दिं ।

X 2 3 0 4 5 6 0 7 8

ता । धुम । किट । धुम । तिट । कता । गदि । गन ।

9 10 11 12 13 14 15 0

लक्ष्मी ताल का निम्न स्वरूप है ठेका पं0 बलवंत राय गुलाबराय भट्ट भावरंग लिखित पुस्तक भावरंग लहरी। द्वितीय भाग में दिया गया है –

मात्रा 21, विभाग 12, ताली 1, 5, 9, 11, 15, 19, 20 और 21 पर तथा 3, 7, 13 और 17 पर खाली।

धा घिड़ । नग धेत् । घिड़ नग । तत् घिड़ । नग धेत् ।

X 0 2 0 3

धेत् घिड़ । नग गद । दी घिड़ । नग तिट । कत । गदि । गन ।[1]

4 0 5 0 6 7 8

गणेष ताल– विलम्बित और मध्य लय में बजाने योग्य, पखावज का प्राचीन, किन्तु अप्रचलित ताल है गणेश जिसके विषय में भिन्न–भिन्न लोगो के मतों में पर्याप्त भिन्नता है। इसके कुछ रूपों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। खुले और जोरदार अंग के इस ताल का अन्तिम प्रकार ज्यादा प्रचार में है।

1– 18 मात्रा, 5 विभाग, 4 ताली, 1 खाली।

धा ऽ धि ट । धि ट धा ऽ । धा ऽ कि ट । त क । ग दि ग न । धा

X 2 3 4 0 X

2– 20 मात्रा, 10 विभाग, 7 ताली, 3 खाली।

धा दीं । ता ता । धेत् धेत् । धेधे नग । धिन धा । किट तक ।

X 0 2 3 4 0

1– ताल परिचय भाग–3 आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0सं0 237, 238 प्रकाशन रूबी प्रकाशन इलाहाबाद।

किड धा । किट तक । तिट कत । गदि गन । धा

5 0 6 X

3– 21 मात्रा, 10 विभाग, 10 ताली, खाली नहीं।

धा ऽ कि ट । त । धा ऽ कि ट । त । क । ग दि ग न । धीं । धा ।

X 2 3 4 5 6 7 8

ता । कत्त धा ता । धा

9 10 X

4– 21 मात्रा, 10 विभाग, 10 ताली, खाली नहीं।

धा धा दी ता । कत्त । तिट धा दीं ता । कत । तिट । ता धागे दीं ता ।

X 2 4 5 6

धागे । ता । तिट । कत गदि गन । धा[1]

7 8 9 10 X

ब्रह्म ताल– ब्रह्म ताल पखावज का प्राचीन और प्रसिद्ध ताल होते हुए भी आज अप्रचलित तालों की श्रेणी में आता है। यह चतस्त्र जाति का समपद ताल है जिसका विभाग 2/2 मात्राओं का है। यह पखावज पर स्वतन्त्र वादन, एवं ध्रुवपद अंग के गायन, वादन की संगति के योग्य ताल है। इसके बोलों के विषय में अवश्य मतभेद है।

मात्रा 28, विभाग 4, ताली 1, 5, 7, 11, 13, 15, 19, 21, 23, 25 और खाली 3, 9, 17, 27 पर।

धा धि । धि धा । त्रक धिं । धिं धा । त्रक धिं । धिं धा।

X 0 2 3 0 4

ती ती। ना ती । ती ना । तू ना । क त्ता। धागे नाधा । त्रक धिं। गदि गन। धा[2]

5 0 7 8 9 10 0 X

1– तबला पुराण पं0 विजय शंकर मिश्र पृ0सं0 143 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2– वही

दक्षिण भारतीय ताल

प्राचीन काल में 100 से अधिक तालों का प्रचार था, ऐसा संकेत मिलता है। परन्तु **''अधंकार युग''** में उनका लोप हो गया। कालान्तर में सालगसूड नामक प्रबन्ध गायन से उसे पुनर्जीवन मिला तो उसके साथ प्रयुक्त होने वाले सात तालें प्रचार में आई जिन्हे सप्तसूलादि ताल कहा गया।[1]

कहा जाता है कि कर्णाटकीय संगीत में प्रचलित आज के 7 प्रमुख तालों को प्रचारित, प्रसारित करने का सर्वाधिक श्रेय सोलहवीं शताब्दी में हुए दक्षिणी संगीत के पितामाह पुरदर दास को है– जिन्होने अपनी रचनाओं में इन तालो का प्रयोग करके इन्हे प्रचलित किया। बाद के संगीतज्ञो में इन तालों का प्रयोग करके इन्हे प्रचलित किया। बाद के संगीतज्ञों मद्राचल, रामदास, क्षेत्रैय। त्यागराज आदि ने भी इन तालों को अपनी रचनाओं द्वारा खूब समृद्ध किया। फलस्वरूप आज ये ही ताल प्रचलित है।[2]

कर्नाटकी ताल पद्धति के सात प्रमुख ताल, ये है–

1–	ताल का नाम	ध्रुवताल			अंगस्वरूप			। 0।।
	चिन्ह	।		0	।	।		
	मात्रा संख्या	4	+	2 +	4 + 4	=	14	
2–	ताल का नाम	मठताल			अंगस्वरूप			। 0।
	चिन्ह	।		0	।			
	मात्रा संख्या	4	+	2 +	4	=	10	
3–	ताल का नाम	रूपक			अंगस्वरूप			। 0
	चिन्ह	।		0				
	मात्रा संख्या	4	+	2		=	06	

1– ताल प्रबन्ध – पं0 छोटेलाल मिश्र पृ0सं0 139, प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2– तबला पुराण – पं0 विजयशंकर मिश्र पृ0सं0 113 प्रकाशक कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

4–	ताल का नाम	झपताल		अंगस्वरूप			। U 0
	चिन्ह	।	U	0			
	मात्रा संख्या	4 +	1 +	2		=	7
5–	ताल का नाम	त्रिपुटताल		अंगस्वरूप			। 0 0
	चिन्ह	।	0	0			
	मात्रा संख्या	4 +	2 +	2		=	8
6–	ताल का नाम	अठताल		अंगस्वरूप			।।। 0
	चिन्ह	।	।	0	0		
	मात्रा संख्या	4 +	4 +	2	+ 2	=	12
7–	ताल का नाम	एकताल		अंगस्वरूप			।
	चिन्ह	।					
	मात्रा संख्या	4				=	4[1]

इस सात तालो के आधार पर कुल 35 भेद होते है। दक्षिणी ताल पद्धति में विशेषकर 6 प्रकार के चिन्हो का प्रयोग करके ताल के विभिन्न भागों की मात्रओं को दर्शाते हैं। इन 6 चिन्हो को षड़–अंग कहते हैं–

षड् – अंग

नं0	चिन्ह	नाम	मात्रा
1–	˘	अणुद्रुत	1
2–	0	द्रुत	2
3–	।	लघु	4
4–	ऽ	गुरू	8
5–	3	प्लुत	12
6–	X	काकपद	16

1– तबला वादन कला और शास्त्र सुधीर माईणकर पृ0सं0 23, 24 प्रकाशक अ0भा0 गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मिरज

उपर्युक्त 6 चिन्हो में लघु नाम का चिन्ह विशेष महत्वपूर्ण है और इसी एक चिन्ह के कारण तालों की विभिन्न जातियाँ पैदा हुई है। लघु चिन्ह की मात्राएँ यद्यपि 4 बतायी गई है। किन्तु पंच जाति भेद के अनुसार लघु की मात्राएं परिवर्तित होती रहती हैं और परिवर्तन से पाँच जातियाँ पैदा हुई है–

पाँच जातियाँ

1– चतस्त्र जाति

2– त्रिस्त्र जाति

3– खण्ड जाति

4– मिश्र जाति

5– संकीर्ण जाति[1]

पंच जाति के अनुसार ताल निर्माण

	ताल नाम	चिन्ह जाति	त्रयस्त्र	चतस्त्र	मिश्र	खण्ड	संकीर्ण
1	ध्रुव	|0 | |	3,3,2,3	4,2,4,4	7,2,7,7	5,2,5,5	9,2,9,9
2	मठ	|0 |	3,2,3	4,2,4	7,2,7	5,2,5	9,2,9
3	रूपक	|0	3,2	4,2	7,2	5,2	9,2
4	झंप	|0̆	3,3	4,3	7,3	5,3	9,3
5	त्रिपुट	|00	3,2,2	4,2,2	7,2,2	5,2,2	9,2,2
6	अठ	| |00	3,3,2,2	4,4,2,2	7,7,2,2	5,5,2,2	9,9,2,2
7	एक	|	3	4	7	5	9
कुल ताल संख्या			**7**	**7**	**7**	**7**	**7 =35**

1– भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण – डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा – पृ0सं0 131 प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशक, दिल्ली।

पंच जाति भेद के अनुसार तालों की मात्राएँ

	ताल नाम	त्रयस्त्र	चतस्त्र	मिश्र	खण्ड	संकीर्ण
1	ध्रुव	11	14	23	17	29
2	मठ	8	10	16	12	20
3	रूपक	5	6	9	7	11
4	झंप	6	7	10	8	12
5	त्रिपुट	7	8	11	9	13
6	अठ	10	12	18	14	22
7	एक	3	4	7	5	9

पंच जाति भेद के अनुसार बने तालों में सबसे अधिक 29 मात्रा का ताल संकीर्ण ध्रुव तथा सबसे कम 3 मात्रा त्रयस्त्र एक ताल है।[1]

कर्नाटकी संगीत के तालिपि में लघु के अन्य 5 भेद भी बतलाये गये है जिसके अनुसार अधिक मात्राओं के तालों का निर्माण हो सके। यद्यपि इन बड़े तालों को व्यवहार में नही लाया जाता है। ये भेद निम्नानुसार है–

1– दिव्यलघु – इसके अनुसार लघु की मात्रा 6 हो जाती है।

2– सिहलघु – इसके अनुसार लघु की मात्रा 8 हो जाती है।

3– वर्णलघु – इसके अनुसार लघु की मात्रा 10 हो जाती है।

4– वाद्यलघु – इसके अनुसार लघु की मात्रा 12 हो जाती है।

5– कर्नाटकलघु – इसके अनुसार लघु की मात्रा 16 हो जाती है।[2]

1– ताल वाद्य शास्त्र – मनोहर भालचन्द्रराव मराठे – पृ0सं0 51 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

2– ताल वाद्य शास्त्र – मनोहर भालचन्द्रराव मराठे – पृ0सं0 52 प्रकाशक शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर।

गति भेद – ''दक्षिणी ताल पद्धति में 5 प्रकार के गति भेद भी है। जब किसी ताल को चौगुन में बजाते है तो उसे इस गति के आधार पर चतस्त्र गति की ताल कहते है। जब तिगुन में बजाते है तो उसे त्रिस्त गति की ताल कहते हैं। पंचगुन में बजाने पर खण्ड गति की, सतगुन में बजाने पर मिश्र गति की और नौगुना में बजाने पर संकीर्ण गति की ताल कहते है।

उदाहरणार्थ – यदि त्रिपुठ ताल तिस्त्र जाति की लें, तो उससे पाँच प्रकार के गति भेद के कारण, पाँच ताले उत्पन्न होगी।

	ताल नाम	जाति	गति	चिन्ह	मात्रा
1	त्रिपुट	तिस्त्र	चतस्त्र	100	3,2,2 X4 = 28
2	त्रिपुट	तिस्त्र	तिस्त्र	100	3,2,2 X3 = 21
3	त्रिपुट	तिस्त्र	खण्ड	100	3,2,2 X5 = 35
4	त्रिपुट	तिस्त्र	मिश्र	100	3,2,2 X7 = 49
5	त्रिपुट	तिस्त्र	संकीर्ण	100	3,2,2 X9 = 63

इस प्रकार 35 तालों से गति भेद कारण 35 X 5 = 175 तालें उत्पन्न होगी।[1]

दक्षिण भारतीय संगीत में मृदंग को मृदंगम् कहा जाता हैं। यह प्रमुख अवनद्ध वाद्य हैं।

दक्षिण के मृदंग और उत्तर के पखावज (मृदंग) में आकार ध्वनि, वादन शैली की दृष्टि से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उत्तर भारतीय मृदंग का आकार मृदंगम् से बड़ा तथा उसका नाद मृदंगम् की अपेक्षा अधिक गूँजयुक्त और गम्भीर है। मृदंगम् का

1– भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा पृ0सं0 133 प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

चमड़ा भी मृदंग से मुलायम होता है। उत्तर भारतीय मृदंग में जिस प्रकार जोरदार थाप लगायी जाती है। दक्षिण मृदगम् में नहीं देखने को मिलती है। इसका मुख्य कारण कृति में ध्रुपद की अपेक्षा कम शक्ति, गहनता एवं ओज की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मृदंगम् मृदंग की अपेक्षा मुलायम एवं मृदु है।

इस प्रकार मृदंग परम्परागत त्रिपुष्कर एवं शारंगदेव कृत मर्दल का ही परिष्कृत रूप है।

अतः पखावज के विकास के साथ–साथ पखावज के विभिन्न वर्ण विभिन्न ताले विकसित हो गयी जिन्हे पखाावज वादको ने अपने घराने के वादन अनुसार भिन्न–भिन्न माना।

———————————————————————

1– भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन – डॉ0 अंजना भार्गव – पृ0सं0 250, प्रकाशक कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली।